भक्त ह्रदय के उद्गार..

पिया मिलन की आस है मन में,
उमंग लिये मैं जाती हूँ।
जाने आज क्या बात है मन में,
तेरी होती जाती हूँ।।

मन चाहे मैं उड़कर सजनी,
पिया से जाये मिलूँ।
अपनी सारी दिल की बतियाँ,
पिया से जाये कहूँ।।

पर बातों से कस पाऊँगी,
मैं तो पिया अज्ञानी हूँ।
क्योंकर पिया रिझाऊँगी,
मैं तो बहु नादानी हूँ।।

जल्द आओ हे राम मेरे,
मैं तो तेरे पाँव पड़ूँ।
ह्रदय से तुम लगाओ मुझे,
ये ही अब बिनती करूँ।।

- परम पूज्य माँ

प्रार्थना शास्त्र नं. १/८९

१६.८.१९५९

अनुक्रमणिका

१. *भक्त हृदय के उद्‌गार..*

३. *आपने मेरा हाथ थामा हुआ है,*
इसमें तो कोई शुब्हा नहीं है मुझे..
श्रीमती पम्मी महता

६. *वह ही तुमको पा सकें,*
जो रे मौन ही हो जायें
'मुण्डकोपनिषद्', द्वितीय मुण्डक १/७

१२. *सुनने योग्य को सुनना चाहिये;*
जो सुना है, उस पर विचार करना चाहिये..
श्रीमद्‌भगवद्‌गीता –
भगवद् बाँसुरी में जीवन धुन, अध्याय २/५०-५२

१८. *दिनचर्या में ध्यान*
विष्णु प्रिया महता

२०. *..राम चरण में जा बैठी,*
तो पल में राम बन जायेगी!
(गीता में स्त्री)
परम पूज्य माँ से 'पिताजी' के प्रश्नोत्तर

२६. *कुछ भी तो मेरे बस में नहीं..*
डॉ. जे के महता

२९. *आदेश तेरा मेरा धर्म भये!*
पूज्य छोटे माँ

३३. *मन में ही साधु जन्म*
श्रीमति शान्ता देवी

३७. *अर्पणा आश्रम*

सम्पादक की ओर से

गद्य में प्रस्तुत सभी लेख साधकों के प्रश्नों के उत्तर में परम पूज्य माँ द्वारा प्राप्त सत्संगों पर आधारित हैं और संकलन-कर्ता की निजी समझ के अनुकूल हैं। काव्य की पंक्तियाँ पूज्य माँ के मुखारविंद से प्रवाहित दिव्य प्रवाह का अंश हैं; जिसे सुश्री छोटे माँ ने लेखनी बद्ध किया है। अपनी पूर्ण सामर्थ्य के अनुसार उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुति में किसी भूल के लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

सम्पादक : *पूनम मलिक*
सह सम्पादक : *श्रीमती साधना पाल*

पता : अर्पणा आश्रम, मधुबन, करनाल
१३२ ०३७, हरियाणा, भारत

श्री हरीश्वर दयाल, अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन, करनाल १३२ ०३७ ०१, हरियाणा द्वारा मार्च २०२२ को प्रकाशित तथा
सोना प्रिन्टर प्राईवेट लिमिटेड, एफ -८६/१, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया फेज़-I, नई दिल्ली ११० ०२० द्वारा मुद्रित

आपने मेरा हाथ थामा हुआ है,
इसमें तो कोई शुब्हा नहीं है मुझे..

श्रीमती पम्मी महता

जैसे सभी ओर शून्यता सी छाई हुई है.. हे श्री हरि माँ प्रभु जी, आप ही से पूछती हूँ कि आंतर में कुछ भी क्यों नहीं दिखाई देता? आपका वह प्यारा प्यारा भाव जो मुझे सदा दुलारता आया है, मेरे भाव में उतरा रहता था.. आज कहाँ गया? क्या मुझसे कोई भूल हुई है माँ, जो मुझे पता नहीं चल रही?

अपना आत्मनिरीक्षण करती हूँ, तब भी ऐसा लगता है जैसे आंतर में कुछ है ही नहीं। विश्वास ही नहीं होता.. जो चित्त आपके श्री चरणन् में बैठ कर बतियाता रहता था आपसे मन ही मन.. उसे हो क्या गया है? कुछ भी समझ नहीं पा रही हूँ। मन को बार-बार पूछती हूँ, 'क्यों भई, यह सब क्या हो रहा है?' पर वह भी कोई जवाब नहीं दे पा रहा.. बस उदासी सी छा जाती है।

परम पूज्य माँ के साथ डॉ. रमेश महता

जब मैं अपने आपको टटोलती हूँ तो स्वयं के आगे स्वयं ही निरूत्तर हो जाती हूँ। आप ही की शरण में आ कर बैठ गई हूँ और आप ही से याचना प्रार्थना करती हूँ, 'हे मेरे परमेश्वर, हे मेरे हृदयेश्वर, आप ही मेरी इस अवस्था से मुझे उबार लीजिये! कहीं इसके रहते आप ही को न खो दूँ.. जो मुझे गवारा नहीं होगा!'

माँ, आपने मेरा हाथ थामा हुआ है इसमें तो कोई शुब्हा (संदेह) नहीं है मुझे! अपने आपसे ही क्या पूछूँ और क्या जवाब माँगूँ.. इसलिए हे दीनानाथ दिनेश, अपनी इस कनीज़ पर अपनी रहमत बख़्शीश कीजिये जो आपके बहाव में बहती ही चली चलूँ.. हाथ जहाँ भी लगे हैं, लगे रहें, मगर मेरे मन को, मेरे चित्त को तो अपने श्री चरणन् में लगे रहने दीजिये! इतना ख़ामोश रह के अपने बहाव को न बहाइये.. कि मुझे उसको वहन करना ही न आये।

हे परम पूज्य श्री हरि माँ, मुझे नहीं पता आप मुझे क्या देने वाले हैं.. जो देंगे मेरे भले के लिए ही होगा। फिर भी मुझे कुछ इशारा ही दे दीजिये जो इस सत्य को आप ही के सत्यार्थ प्रकाश में देख पाऊँ और निरन्तर आप ही के प्रेम बहाव में बहती ही चलूँ!

हे श्री हरि नाथ, मुझे अपने से ही सनाथ किये रहियेगा जो आप माँ की उज्ज्वल कांति से सदा नवाज़ी रहूँ। मुझे पूर्णतया आपके श्री चरणन् में अर्पित व समर्पित भाव से ही रहना है.. इसीलिए आप ही से हे माँ प्रभु जी, अतीव विनम्र व विनीत भाव से प्रार्थना याचना करती हूँ कि इस अपनी कनीज़ को कभी भी अपने से विलग नहीं होने दीजियेगा! मैं हूँ, तो बस आप ही से हूँ। इसलिए मुझे अपनी ही बनाये रखियेगा!

हरि ॐ तत्त सत परब्रह्म परमेश्वर तू
तू ही तू इक तू ही तू सर्व सामर्थ्य तू ही तू
तुझी से तुझको माँगत हूँ और कछु न देना तू

इतनी ही हे ईश, आपसे मंगल याचना करती हूँ, हरि ॐ

क्या कहूँ हे माँ तुझे, क्या न कहूँ.. कह के कुछ भी तो नहीं कह पाती हूँ। यही चाहूँ हे भगवन मेरे, तोरे नाम की ही महिमा हर हाल में गाती जाऊँ!

यह सच है, जो भी कार्यभार आप मुझे सौंपते हैं, उसे मैं तहेदिल से उठा कर करती हूँ.. क्योंकि आपके लिए हर वह काज जो तन मन से करती हूँ, आप श्री हरि माँ के श्री चरणन् में समर्पित कर लेती हूँ। यही आपके चरण तो मेरी आस्था स्थली हैं जहाँ जो भी अर्पित व समर्पित करती हूँ। सच पूछिये, तो वह आप ही की देन है जो आप ही मुझे देते हैं.. फिर आप साथ ही उसे क़बूल भी लेते हैं। मुझे तो बस इतना पता है, आपका देना और उसे पुनः ले लेना आप ही की अद्‌भुत व विचित्र लीला का अंग है.. जो बहुत ही विलक्षण है।

आप कृपा भी करते हैं और फिर कृपा प्रसाद भी दे देते हैं। मगर जब इस तरह .... शून्य हो जाता है.. जैसे सभी ख़ामोश है.. तो इस मन की स्थिति का अवलोकन तो करती हूँ मगर आपके बहाव को जब इतना ख़ामोश देखती हूँ तो लगता है कहीं 'मैं' तो नहीं पुनः उठ आयेगी?

जानती तो हूँ कि इस कारण ही आपसे बार-बार विलग हुई हूँ.. यह जो जीवन है मेरा, यह आप माँ प्रभु जी की ही अमानत है, इसलिए इसे कभी भी 'मैं' से कलंकित न होने दीजियेगा!

आप माँ की अहैतुकी कृपा का यह तो बहुत प्यारा वरदान है.. सर पे आपका वरदहस्त है और आपकी करुण कृपा से आपकी चरण शरण मिली हुई है.. कभी कभी लगता है माँ, इन पलों को कहीं खो न दूँ, आप ही का नज़रेकरम रहे मुझ पर.. तब तलक, जब तक पूर्णतया आप माँ प्रभु जी में समा न जाऊँ!

हे माँ, जिस आपकी कनीज़ ने हर हाल, हर अवस्था में केवल आप ही आपके दर्शन किये हैं.. आप ही आपको अपने से पहले पाया है.. इसी परम सत्य का वास्ता देती हूँ, मुझे अपने में हे हरि, अवश्य विलीन कर लीजियेगा! यूँ ही अपनी मेहर इसपे बनाये रखियेगा!

हरी गई जो 'मैं' से भगवन
फिर हरि की कस हो पाऊँगी..
कस हो पाऊँगी.. आप ही इसे अपने में
हे नाथ विलीन कर जाइये - हरि ॐ ❖

वह ही तुमको पा सकें,
जो रे मौन ही हो जायें..

गतांक से आगे-

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि।
प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च।।

मुण्डकोपनिषद - २/१/७

शब्दार्थः

(तथा) उसी परमेश्वर से अनेक भेदों वाले देवता लोग उत्पन्न हुए; साध्यगण मनुष्य, पशु-पक्षी, प्राण-अपान वायु, धान, जौ आदि अन्न तथा तप, श्रद्धा, सत्य और ब्रह्मचर्य एवम् यज्ञ आदि के अनुष्ठान की विधि भी, ये सब के सब उत्पन्न हुए हैं।

तत्व विस्तारः

पूर्ण की पूर्ण बतियाँ, देख पुनः समझाते हैं।
पूर्ण पूर्ण तू समझे, पूर्ण ही कहते जाते हैं।।१।।

अनेक देवतागण रे कहें, जन्म उसी सों पाते हैं।
शक्ति उससों पा करी, शक्तिमान हो जाते हैं।।२।।

परम शक्ति वह ही है, विभाजित बस वह आप भये।
अनेक देवता रूप में, विभाजित सा वह आप भये।।३।।

सत्त्व सार यह जान ले, एक सत्त्व मन वह ही है।
पुनः पुनः वह कहते हैं, अखण्ड रस रे वह ही है।।४।।

साध्यगण महादेवा गण, ॠषिगण जिनका पूजन हो।
कर्मयुक्त गुणातीत, संतन् का वह जन्म हो।।५।।

सर्व साधारण जीव भी, तन तद्रूप भी जो रहे।
चर अचर विभिन्न योनि, जन्म सबको वह ही दे।।६।।

पूर्ण जग वह पुनः कहें, पुष्टि उससों ही पाये।
पशु पक्षी विभिन्न रूप, सर्व रूप वह धर आये।।७।।

प्राण अपान वायु बनी, पंच प्राण वा रूप धरे।
हर तन में वह पालनकर, वायु रूप संचार करे।।८।।

धान चावल रूप अन्न, जठराग्नि भक्षण करे।
सम्पूर्ण जग औषध को, आपसे आप वह जन्म दे।।९।।

हर तनो तप वह ही है, सहन शक्ति आप भये।
संयम रूपी तप यह है, संयमित सम्पूर्ण चले।।१०।।

श्रद्धा भावना वह ही दे, अनुकूल ही जीवन भये।
जैसी श्रद्धा जो पाये, रूप धरी वह आ जाये।।११।।

पर संग कहें सम्पूर्ण का, कर्ता मेरा राम है।
अपने बस में कुछ नहीं, सत्त्व एको बस राम है।।१२।।

सत्य भावना वह ही दे, ब्रह्मचर्य भी वह ही दे।
ब्रह्म निष्ठा एकाकार, वृत्ति भी बस वह ही दे।।१३।।

विषय सहवास त्याग ही, ब्रह्मचर्य रे होता है।
बाह्य भोग ही विषय नहीं, मन विषय ही होता है।।१४।।

निज तन विषय ही है, तद्रूपता भोग ही होता है।
वृत्ति प्रवाह भाव विषय, संग विषय ही होता है।।१५।।

ब्रह्मचारी वह ही है, विषय सम्पर्क जो छोड़ दे।
परम सत्त्व सों साधक जो, पूर्ण नाता जोड़ दे।।१६।।

बाह्य त्याग ब्रह्मचर्य नहीं, मनोत्याग ब्रह्मचर्य है।
जब लग एको भाव रहे, हो ब्रह्म भाव ब्रह्मचर्य है।।१७।।

सत्य भी इसी को कहते हैं, इक ओंकार ही सत्य है।
कारण सूक्ष्म स्थूल परे, अखण्ड रस ही सत्य है।।१८।।

यज्ञ विधि जो परम तलक, ले जाये वह भी वह ही है।
परम यज्ञ समिधा रूपी, जीवन आहुति वह ही है।।१९।।

अखिल जन्म रे उसके हैं, अखिल जन्म दे वह ही है।
अखिल नाम रे उसके हैं, अखिल रूप भी वह ही है।।२०।।

ब्यान समान उदान प्राण, अपान भी रे वह ही है।
अंग अंग और इन्द्रियगण, कह चुके बस वह ही है।।२१।।

महाभूत तन्मात्रा भी, अधिदेव भी वह ही है।
वह रुद्र देव वह ब्रह्मा भी, वासुदेव भी वह ही है।।२२।।

इन्द्र प्रजापति यम भी, वरुण अश्वनि वह ही है।
हर शक्ति वह सूर्य देव, अग्न देव भी वह ही है।।२३।।

हर शक्ति रे वह ही है, उत्पत्ति इससों ही पाये।
अनेक भेद जो दीखें, उसके ही रे हो जायें।।२४।।

साध्यगण वह पूज्य जन, अवतार भी वह ही है।
मनुष्य जीव जो पूजे उसे, साधक भाव भी वह ही है।।२५।।

श्रद्धा जिससे पूजन हो, श्रद्धा जिससे सब कुछ कहो।
सत्य वह ब्रह्मचर्य वह, जिससों परम का मिलन रे हो।।२६।।

यज्ञ विधि यम नियम भी, पूर्ण ही बस वह ही है।
मन मेरे रे जान ले, सत्त्व तत्व बस वह ही है।।२७।।

उत्पत्ति कारण है वह, त्रिविध रूप की कहते हैं।
स्थूल कारण सूक्ष्म रूप, की यहाँ पर कहते हैं।।२८।।

संगी भोगी वह ही भये, परम का योगी वह ही भये।
श्रद्धालु मन वह ही भये, वियोगी मन भी वह ही भये।।२९।।

प्राकट्य उन्हीं से होता है, और उन्हीं में होता है।
कर्म धर्म जो पूर्ण है, सब उन्हीं से होता है।।३०।।

मन मेरे तू जान ले, जग का वह ही 'होता' है।
वेद मन्त्र रे उसके हैं, जीवन का वह 'होता' है।।३१।।

कर्ता एको वह ही है, तू कहाँ पे अब रहे।
तेरा जन्म है वा जन्म, भिन्नता अब कहाँ पे रहे।।३२।।

पृथक् भाव रे तुझमें हैं, यह भी भाव उसका है।
अनेक रूप तू देखे है, तेरा स्वभाव भी उसका है।।३३।।

यह खिलवाड़ रे उसका है, वा के भाव हैं खेल रहे।
मिथ्या संग रे तू करके, अपना खेल हो समझ रहे।।३४।।

तू समझे तूने यत्न किया, फल में बहु है धन मिला।
मूर्ख ऐसी मान्यता क्यों, उससे ही सब तुझे मिला।।३५।।

मन में भाव जो भरे हुये, कभी यह कहें कभी वह कहें।
समझ सके तो समझ ले, वही कहे मन यह जो कहें।।३६।।

आधुनिक गान जो होता है, मत समझो यह तेरा है।
एक भाव मन जाने है, नहीं नहीं यह तेरा है।।३७।।

तू न जाने कब क्योंकर, कौन भाव बह जाते हैं।
तू न जाने कौन शब्द, कब रे क्या कह जाते हैं।।३८।।

तू अपनाये इस तन को, भूल कहूँ यह तेरी है।
पर रे राम तुमसे कहें, यह मनोमान्यता तेरी है।।३९।।

गर कहें तुझे तो तू कहे, कहे नहीं करूँ वह तू ही करे।
जो भी कहें जो भाव बहें, हर रूप में तू ही हरे।।४०।।

परम कारणा तू ही है, और करे धारणा तू ही है।
साधक भावना तू ही है, जाने साधना तू ही है।।४१।।

जड़ जंगम सब तू ही है, अखण्ड रस इक तू ही है।
परम ज्ञान और चेतना, अद्वैत तत्व बस तू ही है।।४२।।

स्वप्न में तुझको क्या हेरें, हेर हेर के न पायें।
वह ही तुमको पा सकें, जो रे मौन ही हो जायें।।४३।।

कहें यह सब कुछ तू ही है, तोरे कर्मन् का खेल है।
कर्मन् ने हैं रूप धरे, और रेखा किया यह मेल है।।४४।।

क्रीड़ा बस यह तेरी है, अब रे राम यह जान रहे।
किस विध रास रचायें यह, तेरी परम तान है जान रहे।।४५।।

बीज भी तेरे बस में हैं, और फल भी तेरे बस में है।
जन्म मरण का राम मेरे, जब मूल ही तेरे बस में है।।४६।।

कौन जन्म किसका जन्म, कर्मन् का है जन्म हुआ।
राम खेल खेल में, खेल का ही जन्म हुआ।।४७।।

कहूँ यह 'मैं' कोई मेरी है, इसका प्रश्न ही नहीं उठे।
कहूँ कर्म यह मेरी है, यह कथन अब नहीं उठे।।४८।।

कोई रेखा कर्माशय से, प्रदुर हो आई है।
कर्मफल रस अंग अंग, भाव रूप में पाई है।।४९।।

मनो मान्यता जो भी है, वह भी तेरा खेल है।
अनेक रूपी तव भावना का, हुआ यह मन से मेल है।।५०।।

राग द्वेष मोह काम, लोभ भी जो जो प्रदुर हुये।
क्यों न कहूँ तुझसे ही, तुममें ही हैं प्रदुर हुये।।५१।।

रुद्र रूप तुम धर करके, संहार इन्हीं का करते हो।
खेल खेल में सगरे रूप, तुम आप ही राम रे धरते हो।।५२।।

करुणापूर्ण बन जाओ, कभी ताण्डव नृत्य यहाँ कर जाओ।
विपरीत रूप तू धर करी, अपने में ही उभर आओ।।५३।।

वायु अग्न तेरे महातत्व, तन्मात्रा देवा वा के।
विपरीत ही पूर्ण हो जायें, आदेश तुमसे ही पा के।।५४।।

हर मनो भावना तू ही है, तेरी भावना ही तो है।
व्यष्टि चाहना समष्टि भी, तेरी चाहना ही तो है।।५५।।

समष्टि चाह में देवता गण, चाहना रूप रे बन जाये।
व्यष्टि रूप में कर्मन् की, तव चाह चाहना बन जाये।।५६।।

गर चाहे प्रलय रे करे, गर चाहे यहाँ स्वर्ग भये।
गर चाहे हो राम राज्य, गर चाहे बस राम रहे।।५७।।

तेरे बस में ही सब है, अपनी लीला तू जाने।
तेरा मन ही आज कहे, अपनी क्रीड़ा तू जाने।।५८।।

१०-९-६१

सुनने योग्य को सुनना चाहिये;
जो सुना है, उस पर विचार करना चाहिये..

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता - २/५०

शब्दार्थ :

१. जो बुद्धि युक्त हो जाये,

२. वह पुरुष इस लोक में ही पाप पुण्य त्यज देता है,

३. इसलिये तू योग की प्राप्ति के लिये चेष्टा कर,

४. योग से कर्मों में कुशल हो जाता है।

तत्व विस्तार :

पाप पुण्य त्यज देता है :

१. जब आत्मवान हो जाये, तब वह पाप पुण्य त्यज देता है।

२. स्वरूप स्थित जब हो गया, तन ही

उसका नहीं रहा तब कर्तृत्व भाव भी नहीं रहता।

३. कोई गुण उसका नहीं रहता।

४. जो तन को नहीं अपनाता, तनोकर्म को वह अपना कैसे कहे?

५. अहंकार ही जब मिट गया तो गुणों का गुमान कैसे करें?

६. तन पाप पुण्य जो भी करता है, वह उसे अपनाता ही नहीं।

७. जब तन से ही संग न कर पाये तो कर्म कौन अपनायेगा?

क) क्योंकि वह जानता है कि आत्मा का जन्म नहीं होता इसलिये वह यह जानता है कि मेरा कोई जन्म नहीं।

ख) वह मनोखेल सामने देख रहा है पर 'मेरा कोई कर्म नहीं', ऐसा वह मानता है।

१. परिस्थिति अनुकूल वह नित्य ही रूप बदलता रहता है।

२. कोई रूप उसका नहीं होता।

३. न कोई नाम ही उसका रहता है।

४. 'मैं यह हूँ' 'मैं वह हूँ' यह सब संगी अहं ही कहता था और मन के नाते कहता था।

५. आत्म स्वरूप और आत्मवान अपने तन के प्रति नित्य मौन ही रहता है।

योगी के कर्म :

इस कारण वह कहते हैं उस योग की चेष्टा करो। फिर योग स्थित की कहते हुए बताते हैं कि :

१. जितना समत्व योग होगा, उतना ही कर्म परिणाम से वह नहीं डरेंगे।

२. जितना ही तनत्व भाव कम होगा तब सब कर्म भगवान के लिये करेंगे।

३. ध्यान परम में टिका होगा, तब सब कर्म दक्षता से ही करेंगे।

४. 'मैं तन नहीं' यह मान रहे होंगे तो तन की परवाह किये बिना सब काज कर्म करेंगे।

५. फल की चाहना नहीं होगी तो साधना समझ कर ही सब काज करेंगे।

६. जब मन राह में विघ्न नहीं बनेगा, तब कर्म अच्छे ही होंगे।

७. जो भी काज सामने हो, वह उसके लिये अपनी जान लड़ा देंगे।

८. बिना ध्यान करे कि वह जियेंगे या मरेंगे, वह अपना सब कुछ लगा देंगे।

९. यदि अन्य ध्यान कोई होगा नहीं तो काज पर पूरा ध्यान लग जायेगा।

१०. कार्य निपुण, कर्म कुशल वह स्वतः ही हो जायेंगे।

११. उनको विभिन्न कर्मों का अभ्यास होता ही रहेगा।

१२. क्योंकि भिन्न भिन्न काज, लोग उन्हें देते ही रहेंगे। इस कारण वह बहु विधि कार्य कर्म में दक्ष हो जायेंगे।

नन्हीं! जब बुद्धि का योग आत्मा से होने लगता है, उसका प्रमाण यह है कि वह कर्मों में कुशलता पाने लग जाता है। आत्मवान बनने की यही सहज विधि कही है।

एक ओर से बुद्धि बढ़ाते जाओ और अपने को मनाते व समझाते जाओ कि 'आप तन नहीं हो आत्मा हो,' और दूसरी ओर से अपने तन को दूसरों के काज में निष्काम भाव से दक्षता तथा कुशलतापूर्वक लगाते जाओ।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता - २/५१

भगवान बुद्धि की राही योग की विधि बता कर कहते हैं, तू भी ऐसा ही कर!

शब्दार्थ :

१. बुद्धियुक्त ज्ञानी जन कर्मों से उत्पन्न
२. फल को त्याग कर जन्म-मरण से मुक्त हुए,
३. निर्दोष पद को प्राप्त होते हैं।

तत्व विस्तार :

फिर से भगवान कह रहे हैं कि :

१. बुद्धि से युक्त होकर जीव कर्मफल का त्याग करते हैं।
२. कर्मफल को त्याग कर जीव जन्म-मरण के चक्र से तर जाते हैं।

नन्हीं! जैसे पहले भी कह कर आये हैं, बुद्धि गर भली प्रकार तन को जान ले और 'मैं तन नहीं हूँ' इसका राज़ जान ले, तो वह अपने मन को मना सकती है और शनैः शनैः जीवन में कर्मों के राही अभ्यास करती हुई आपको तनत्व भाव से परे रखती है।

कर्म करते समय यही याद रखना चाहिये कि 'मैं तन नहीं हूँ' और 'यह तन मेरा नहीं है।' ज्यों ज्यों यह भाव आपके हृदय में परिपक्व होता जायेगा, आप स्वतःही :

१. कर्मफल की ओर ध्यान नहीं रखेंगे।
२. निष्काम कर्म करने शुरू कर देंगे।
३. आपका जीवन शनैः शनैः निर्दोष होने लग जायेगा।
४. आपका मोह धीरे धीरे कम होने लगेगा।
५. तन का कर्तृत्व भाव भी छूटने लगेगा।
६. जब तन अपनाना बन्द होने लगेगा, तब आप अपना रूप भी भूलने लगेंगे।

७. जब आप इसकी पराकाष्ठा तक पहुँचेंगे तब जन्म-मरण के बन्धन से स्वतः छूट जायेंगे, क्योंकि जब आप अपने तन को ही अपना नहीं मानेंगे तो आप अपने जन्म को अपना कैसे मानोगे? अपने मनोकर्म को अपना कैसे मानोगे? संग ही जन्म-मरण के बीज में प्राण भरता है।

राग :

१. राग ही जन्म-मरण का कारण है।
२. राग ही मोह और अज्ञान का मूल कारण है।
३. राग ही जीव को जीवत्व भाव से बाँधता है।
४. राग ही जीव को तनत्व भाव से बाँधता है।
५. राग ही जीव को कर्तृत्व भाव से बाँधता है।
६. राग के कारण ही जीव तन के गुणों के तद्रूप हो जाते हैं।
७. राग के कारण ही जीव तन के गुणों को अपना मानने लगते हैं।
८. राग के कारण ही जीव का ज्ञान नष्ट हो जाता है।
९. राग के कारण ही जीव जहान में इतना अनिष्ट करते हैं।

गर संग ही न रहे तो जीव जीते जी तर जाये और तनत्व भाव से उठ जाये। इसी संग को मिटाने के लिये ज्ञान चाहिये, इसी संग को मिटाने के लिये बुद्धि चाहिये। हमारा संग मिथ्यात्व से हो गया है, यह संग अब आत्मा से करना है और फिर आत्मा में लय हो जाना है। पूर्ण शास्त्र ज्ञान तथा साधना मार्ग इसी तनो तद्रूपकर संग को मिटाने की ही बातें कहते हैं।

यह संग मिटे तो परम में टिके, बस इतना ही कहा श्याम ने!

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।

श्रीमद्भगवद्गीता - २/५२

शब्दार्थ :

१. जब तेरी बुद्धि मोह रूपी दल दल से तर जायेगी,
२. तब तू सुनने योग्य और सुने हुए से,
३. वैराग्य को प्राप्त होगा।

तत्व विस्तार :

मोह :

मोह कलिल को प्रथम समझ ले :

१. मोह के कीचड़ को मोह कलिल कहते हैं।
२. मोह की दल दल को मोह कलिल कहते हैं।
३. जिसमें फंसो और फंसते ही जाओ, उसे कलिल कहते हैं।
४. मोह का आवरण ही मोह कलिल उत्पन्न करता है।
५. जब मोह उठ आता है तो मिथ्यात्व में सत् दर्शन होने लगते हैं।
६. वास्तविकता के दर्शन में विघ्न, मोह

का आवरण ही होता है।

७. असत् में सत् का आभास और सत् में असत् का आभास मोह के कारण ही होता है।

८. फिर दूसरी ओर से जड़ तन को ही अपना मान लेना भी मोह के कारण होता है।

९. आत्म-अनात्म का विवेक न होना भी मोह के कारण होता है।

१०. अहंकार, दम्भ, दर्प, यह सब मोह का कीचड़ ही हैं।

अब भगवान कह रहे हैं कि जब तुम्हारी बुद्धि मोह के कीचड़ से तर जायेगी, तब तू जो सुन चुका है और जो सुनने योग्य है, उन दोनों के प्रति वैराग्य पा लेगा। जो जीव मोह से उठ जाता है, या कहें जो मिथ्यात्व को छोड़ देता है वह तो :

१. आत्म-अनात्म विवेक को पा लेता है।

२. जीवन में आत्मवान बन जाता है।

३. तनत्व भाव को छोड़ देता है।

४. कर्तृत्व भाव को छोड़ देता है।

५. तन के कर्मों से संग को छोड़ देता है।

६. तन के भोगों से भी संग नहीं करता।

७. भोक्तृत्व भाव को छोड़ देता है।

उसके लिये तो :

८. सांसारिक विषय कोई मूल्य नहीं रखते।

९. देहात्म बुद्धि का भी कोई मूल्य नहीं।

१०. संसार में कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं रह जाता।

उसे तो अपने लिये संसार से कुछ भी पाना नहीं होता। संसार के विषयों तथा ज्ञान को जीव तब तक ही महत्व देता है, जब तक उसका अपने तन से संग और संग जनित मोह नहीं जाता। जब वह अपने तन से ही नाता तोड़ देता है तो जो विषय तन राही ही जाने जा सकते हैं, उन पर वह ध्यान नहीं देता। जिसने ऐसी स्थिति पा ली है और जो आत्मवान हो गये हैं, उनके लिये भगवान कह रहे हैं कि, 'ऐसे लोग, सुनने योग्य और सुने हुए के प्रति' वैराग्य को प्राप्त करते हैं।

नन्हीं! आज शास्त्र सुनने योग्य हैं क्योंकि इनकी सहायता से जीव मोह से तर सकता है..

१. अज्ञानी को ज्ञान समझ आ सकता है।
२. अज्ञान नष्ट हो सकता है।
३. स्वरूप की समझ आ सकती है।
४. बुद्धि निर्मल हो सकती है।
५. मिथ्यात्व की समझ आ सकती है।
६. मिथ्यात्व को छोड़ा जा सकता है।

जब तक साधक आत्मवान नहीं हो जाता, सुनने योग्य को सुनना चाहिये; जो सुना है, उस पर विचार करना चाहिये और उस सुने हुए का जीवन में अभ्यास करना ही चाहिये।

किन्तु जब वह आत्मवान हो जाये तब :

क) शास्त्र उसे क्या बता सकेंगे? वह तो स्वयं शास्त्रों का लक्ष्य बन जायेगा।
ख) शास्त्र तो शब्द ज्ञान है, वह तो स्वयं ज्ञान की प्रतिमा बन जायेगा।
ग) शास्त्र उसे क्या सिखा सकेंगे? शास्त्र तो अपनी व्याख्या का समाधान आत्मवान के जीवन में पायेंगे।
घ) शास्त्र सप्राण प्रमाण नहीं हैं, वह उस आत्मवान की ओर ले जाने वाले पथ की बातें कर सकते हैं।
ङ) शास्त्र आत्मवान के बाह्य चिन्ह थोड़े थोड़े बता सकते हैं, किन्तु आत्मा को शब्दों में नहीं बांध सकते।

जो आत्मवान हो जाते हैं, वह शास्त्र कथन जो सुनने योग्य हैं, उन्हें सुन कर क्या करेंगे? जो शास्त्र कहते हैं, वह तो वह स्वयं बन चुके हैं। शास्त्र की जीती जागती प्रतिमा तो वह आप हैं। शास्त्र ज्ञान का विज्ञान रूप तो वह आप हैं। शास्त्र कथित अध्यात्म के प्रकाश स्वरूप वह आप हैं। शास्त्र कथित दिव्य विशुद्ध रूप तो वह आप हैं। शास्त्र कथित निराकार का आकार तो वह आप हैं।

नन्हीं! तुम उसका तन तो देखते हो, पर तन का मालिक तन में नहीं है, क्योंकि वह तन की तद्रूपता छोड़ चुके हैं। उन्हें सुनने योग्य या सुने हुए वाक्य प्रभावित नहीं करते। सुनने योग्य या सुने हुए वाक्य तो तनत्व भाव से बधित को अपने तन के नाते ही प्रभावित करते हैं।

उन्हें लोग वैरागी कहते हैं। उन्हें लोग संन्यासी कहते हैं। उन्हें लोग आत्मवान कहते हैं। वह तो स्वयं अपने प्रति नित्य मौन ही रहते हैं। उनका अपना तन ही नहीं, इस कारण वह अपनी बात कम ही करते हैं। यदि लोग उनके तन की ही बातें करें, तब वह जैसे दूसरे की बात कर सकते हैं, वैसे ही अपने तन की भी बात कर देते हैं। उनके लिये उनका अपना तन भी दूसरे के तन के समान एक विषय ही है। शास्त्रों का प्रमाण वह स्वयं होते हैं, इस कारण वह अनेकों बार अपना निजी प्रमाण तथा उपमा देते हैं। उनका जीवन ही शास्त्र की व्याख्या होता है, इस कारण उनके सहवासी गण सब ज्ञानीवत हो जाते हैं। अधिकांश देखा गया है कि ऐसे लोगों के समीपवर्ती काफ़ी उद्दण्डी होते हैं और आत्मवान का फ़ायदा उठाने वाले होते हैं। यह इस कारण होता है क्योंकि आत्मवान अपनी वफ़ा इत्यादि का प्रमाण देते हैं, उनसे फ़ायदा उठाने वाले जानते हैं कि वह उन्हें छोड़ेंगे नहीं, उनसे फ़ायदा उठाने वाले जानते हैं कि वे जो मर्ज़ी कर लें, यह अप्रभावित ही रहेंगे।

किन्तु मोहकलिल से जब बुद्धि तर जाती है तो देहात्म बुद्धि न रह कर यह आत्मबुद्धि हो जाती है। यह बुद्धि बाह्य तथा तनो संसार से नित्य अप्रभावित रहती है और आत्मा में स्थित हो जाती है। ❖

दिनचर्या में ध्यान

विष्णु प्रिया महता

अर्पणा पुष्पांजलि अंक जून २०००

प्रश्न : मन की ध्यान लगाने की क्षमता कैसे बढ़ाई जाये? मन एक ओर लग जाये तो दूसरी ओर का ध्यान भूल जाता है..

पूज्य माँ : एकाग्र ध्यान की बात इस प्रकार समझो। एक टेप रिकॉर्डर का माईक बहुत सूक्ष्म होता है। यदि कहीं से भी दूसरी आवाज़ आ जाये तो रिकॉर्डिंग ठीक नहीं होती, परन्तु यदि गाने की आवाज़ ऊँची है तो पास रखी घड़ी की टिक टिक की आवाज़ नहीं आती। जब गाना बन्द हो जाता है तो टिक टिक की आवाज़ आने लगती है। इसी प्रकार ध्यान में जिस भाव की प्रधानता है, उसके आगे बाक़ी भाव स्वतः ही गौण हो जाते हैं।

यदि किसी काम में एकाग्रता से ध्यान लगाते हो तो ध्यान लगाते ही पहले दस मिनट में उसके सब पहलू खुल जायेंगे, दूसरी बार पाँच मिनट में और तीसरी बार कुछ भी समय नहीं लगेगा। इसी में जीवन की सफलता का रहस्य भी छिपा है। एक व्यक्ति को काम करने में इतनी देर लगती है, दूसरा वही काम दस मिनट में कर देता है। इनमें भेद एकाग्रता का है।

ध्यान का परिणाम - दक्षता

जब कोई अफ़सर कहे कि काम समय पर पूरा नहीं होता, इसलिये वह देर से घर आता है, तो कहते हैं या तो वह नालायक है, या फिर उसकी घर में लड़ाई है, वरना यह कैसे हो सकता है कि काम समय पर पूरा न हो? या यह भी हो सकता है कि उसमें अपनी न्यूनता का भाव इतना बढ़ गया है कि वह अब अपने को उलटे ढंग से श्रेष्ठ दिखलाना चाहता है!

संसार में सच्चाई, लग्न और मेहनत की सबको ज़रूरत है। हर इन्सान को इन गुणों की तलाश है। फिर भी ग़लती इसलिये हो जाती है क्योंकि मन एकाग्र नहीं। तुम कहते हो, तुम काम करते हो - परन्तु वहाँ मन तब लगता है जब इस काम में मान मिलना हो। ध्यान तो यहाँ टिका है कि मुझे मान मिला या नहीं, या कहीं मेरा अपमान न हो जाये, फिर काम में दक्षता कैसे आयेगी?

ध्यान में विघ्न

साधक अपने ही मन का बहुत तीक्ष्ण दृष्टि से निरीक्षण करता है। जागृत स्तर पर

तो मन काम कर रहा है, परन्तु मन में निहित भाव यह कह रहा होता है कि :

- कहीं मेरा अपमान न हो जाये,
- लोग समझें कि मैं बहुत लायक हूँ,
- किसी को मेरी असलियत का पता न लगे, इत्यादि।

आप सारा समय अपने को घूँघट में छिपाने का प्रयत्न करते रहते हैं। आपकी दृष्टि यहाँ टिकी है कि लोग घर आ रहे हैं इसलिये घर सजा लें। आपको यह शौक नहीं कि चीज़ सुन्दर चाहिये। आप लोगों को दिखाने के लिये सब करते हैं, इसलिये ध्यान में एकाग्रता एवं काम में दक्षता नहीं आ सकती।

निहित प्रेरणा शक्ति

साधक ने देखना यह है कि ध्यान कहते किसे हैं? एकाग्र चित्त का प्रवाह किस तरफ है, यह देख कर बात करो। चित्त कहाँ टिकता है, निहित भावना देखो और देख कर आगे चलो।

अनेकों बार आपने देखा होगा कि स्थूल स्तर पर काम हो रहा है, परन्तु ध्यान तो वहाँ नहीं। ध्यान आन्तरिक प्रवाह को कहते हैं। यह ध्यान प्रेरणा शक्ति पर आधारित होता है! देखना यह है कि :

- वहाँ निहित प्रेरणा शक्ति क्या है?
- उसके पीछे वृत्ति क्या है?
- यह कर्म प्रेरित किसने किया?

फिर जिस चाहना ने कर्म प्रेरित किया, जब उसका घूँघट उठा तो पता चला कि काम के पीछे भाव था.. मुझे मान मिले, लोग मुझे श्रेष्ठ कहें, इत्यादि! सो, पहले इस बात को समझो!

अपने आन्तर के भाव देख कर आगे बढ़ो, फिर वास्तविक ध्यान टिकेगा। बाहर ध्यान लगाने से ध्यान नहीं टिकेगा, अपने पर ध्यान लगाओ तो ध्यान दीर्घकाल तक लगेगा।

दिनचर्या के कामों में भी देखोगे तो फिर इसी को आधार बनाकर करोगे। फिर तुम्हे कमरे की सफ़ाई अपने लिये चाहिये होगी, न कि लोगों को दिखाने के लिये। यहाँ कमरे से अर्थ लो कर्मों से। फिर तुम्हारे सारे कर्म केवल कर्त्तव्य रूप हो जायेंगे। जब जीवन में ऐसा अभ्यास करने लगोगे तो थोड़ी देर बाद आप कर्म तो करोगे, परन्तु उनका फल लोग लेंगे।

पहले यह देखो कि मन में क्या है? जहाँ निहित भावना होगी, वहीं पर ध्यान टिकेगा। यदि भावना यह है कि लोग कहें - 'मैं दानी हूँ, श्रेष्ठ हूँ,' निहित माँग तो यह है और कर्म कुछ और हैं, फल तो निहित भावना का ही मिलेगा। इसलिये साधक का ध्यान अपनी निहित माँग पर होता है, स्थूल कर्मों में नहीं। ❖

..राम चरण में जा बैठी, तो पल में राम बन जायेगी!

(गीता में स्त्री)

पिता जी

गीता के नवम अध्याय में भगवान ने कहा है कि जो कोई मेरी शरण में आता है वह परम गति को पा लेता है, चाहे वह पाप योनि का हो, चाहे स्त्री हो, चाहे शूद्र हो :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।। (९/३२)

इस श्लोक में ब्राह्मण और क्षत्रिय का कुछ नहीं कहा, स्त्री को पापी और शूद्र के साथ मिला दिया है, यह बात समझ में नहीं आई।

सारांश

नारी के सहज व्यक्तिगत गुण महाश्रेष्ठ होते हैं। इनका वर्धन करके इन्हें समष्टिगत रूप या दैवी गुण सम्पदा में विस्तृत करने की जगह वह मोहवश होकर उन्हें सीमित कर देती है। भगवान जब कोई दिव्य गुण जीव को दें और जीव उसे मोह और अज्ञान के कारण न्यून कर दे, यह पाप है। भगवान के गुणों का वर्धन होना चाहिये, उन्हें संकुचित करना अपना ही पतन करना है।

प्रश्न अर्पण

गीता में तूने श्याम कहा, जो तेरी शरण में आता है।
पाप योनि का भी गर हो, वह परम गति को पाता है।।१।।

शूद्र वैश्य संग स्त्री कहा, ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं कहे।
पाप योनि संयोग में, स्त्री का क्यों नाम तू ले।।२।।

तत्व ज्ञान

स्त्री स्वरूप तो देख ले, आश्रित है पराधीन रहे।
आरम्भ से ही वह अबला है, यह बात कैसे छुपे।।३।।

पुरुष बलवान यह निर्बल है, स्थूल बल की बात कहें।
पुरुष को वह ही जन्म दे, पालन भी उसका करे।।४।।

वात्सल्य वा स्वरूप है, प्रेम ही उसका रूप है।
परतंत्र वह नित्य रहे, अधीनता ही वा रूप है।।५।।

अबला नारी नहीं कहो, जो सत्य पे जाये टिके।
मोह ममता की मारी रहे, न्यून योनि तब ही कह दें।।६।।

बंधन में वह पड़ी रहे, शिशुअन् से वह संग करे।
वा गर्भ से वह जन्में, अपना रूप वह माना करे।।७।।

सहज गुमान ही उसका है, सहज यह रूप भी उसका है।
दुग्ध देई पाले शिशु, सहज में भूले किसका है।।८।।

संग सहज हो जाता है, राज़ वह खुल नहीं पाता है।
मन पति और शिशु के, आश्रित सहज हो जाता है।।९।।

सत् का आश्रय वह जब ले, महा शक्ति वह बन जाये।
परम से संग जो हो जाये, महा भक्ति वह बन जाये।।१०।।

करुणापूर्ण नारी हृदय, क्षमाशील वह सहज में है।
दया धर्म पूर्ण है वह, प्रेम स्वरूप ही उसका है।।११।।

'मैं' 'मम' का अहं त्यजी, गर सब राम का जान ले।
बहुत कठिन है उसके लिये, पर फिर भी पहचान ले।।१२।।

पल में तत्व पा जायेगी, नारी अमर हो जायेगी।
सत्त्व आवाहन हिय करे, सत् स्वरूप हो जायेगी।।१३।।

दैवी गुण वहाँ सहज बसें, गुणातीत वह सहज में है।
'मैं' 'मेरे' प्रति है सब, अपुनो प्रति तो सहज में है।।१४।।

विशालमनी गर हो जाये, सत् से प्रीत जो हो जाये।
सब ही राम का हो जाये, फिर सब से प्रीत हो जाये।।१५।।

वह ही गुण जो घर में दे, जग में गुण वह बह जाये।
बहुत कठिन स्त्री के लिये, गर चाहे सहज ही हो जाये।।१६।।

ज्ञान-विज्ञान सहित

कृष्ण ने नारी प्रति ही कहा, वहाँ कीर्ति श्री धृति आप हैं।
वाक् मेधा स्मृति क्षमा, नारी में श्याम कहा आप हैं।।१७।।

तो कैसे कहें श्याम ने, नारी को है न्यून कहा।
पाप योनि की बात नहीं, गर ग़लत भये वहाँ मान्यता।।१८।।

जन्म शिशु को जब वह दे, वह उसको अंग लगाती है।
मूर्ख्रता बस इतनी है, वहाँ मोह उमड़ वा आती है।।१९।।

वह मोह रंगी वह संगिनी, कुछ भी देख्र नहीं पाती है।
नयन उसकी देख्र ज़रा, पूर्ण आंधो हो जाती है।।२०।।

"जस चाहूँ उसे बनाऊँगी, वह मेरी ओर ही देख्रेगा।
पूर्ण मोरी हर चाहना, यह शिशु मेरा कर देगा"।।२१।।

बहु लाड़ चाव से शिशु को, वह तो पाले जाती है।
'मोरा है मोरा अंग है, यह मैं हूँ' माने जाती है।।२२।।

मोह ग्रसित भोली भाली, सत्यता देख्र न पाती है।
पृथक् व्यक्ति शिशु वह है, वह यह समझ्र न पाती है।।२३।।

अंग लगा के प्रेम जता के, उसे रिझाये जाती है।
वा मोह में निरंतर ही, और वह डूबे जाती है।।२४।।

वह न्याय भूले वह सत्य भूले, यह प्रीत न कहलाये।
वास्तविकता भी निज शिशु की, कबहुँ न उसे दिख्र पाये।।२५।।

शिशु शिशु में भेद करे, कोई भला लगे कोई न भाये।
जो भला लगे उसको देख्रे, अरुचिकर दूर किये जाये।।२६।।

पल पल वह लालन पोषण, ज्यों ज्यों करती जाये है।
प्रतिरूप में उसे प्रेम मिले, यह शिशु से चाहे है।।२७।।

जब शिशु यह नाहिं दे, वांछित फल उसे नहीं मिले।
तब नारी वह तड़प पड़े, 'माँ' कभी वह नहीं भये।।२८।।

माँ का अपना रूप नहीं, वह अपनापन नहीं मढ़ती है।
अपने आप को भूले वह, जब सत् में वह विचरती है।।२९।।

अपनी चाहना संग त्यजी, शिशु भगवान का माने है।
वा संग मोह स्वतः छूटे, जब राम शिशु उसे माने है।।३०।।

पर यह समझ नहीं पाती है, वह माँ है नारी नहीं।
शिशु गर्भ से जन्मा है, अब पृथक् है वा अंग नहीं।।३१।।

मोह ग्रसित नारी ही, सत् असत् न देख सके।
सत् उसको न भाये, असत् सत् न कर सके।।३२।।

अज्ञान आवरण इतना है, भ्रम में ही रह जाती है।
महा दुःखी वह हो जाये, जब शिशु पृथक् हो जाती है।।३३।।

गुमान किया जिस शिशु पे, चाहा जिसपे नित राज्य रहे।
शिशु अहं अब उठ आई, कैसे माँ का राज्य सहे।।३४।।

स्त्री व्यथा की क्या कहें, वह निरंतर आँसू बहायेगी।
पर राम चरण में जा बैठी, तो पल में राम बन जायेगी।।३५।।

गर मोह संग वह छोड़ दे, साधना सहज हो जायेगी।
वह काज कर्म तो नित्य करे, चरण में स्वतः चढ़ायेगी।।३६।।

शिशु में वह सत्य भरी, गर राम चरण में धरी आये।
ऐसी नारी के घर में, अमरत्व निश्चित ही आये।।३७।।

उसकी व्यथा भी देख ज़रा, जिस सब किया और लुट गया।
निज ख़ून से जिसको सींचा, वह ही सामने छुट गया।।३८।।

केवल दर्द की प्रतिमा वह, दुःखघन वह तो आप है।
हर आस टूटी वा सामने, हर पल उसको याद है।।३९।।

पर जब उसको याद आये, तो राम चरण में जा बैठे।
कहाँ भूल हुई मेरी राम कहो, यह भाव भरी कर आ बैठे।।४०।।

राम चरण गहे जानो, पूर्ण दुःख सब मिट जाये।
जीवन भर संग्रह जो किया, वह मोह घूँघट खुल जाये।।४१।।

निश्चित नियम यह जानिये, जो साचो माँ कुल में बने।
अपने शिशु से मोह रहित, व्यवहार दिनचर्या में करे।।४२।।

वह माँ ही बन जाये जब, शिशु बिछुड़े तो क्या हुआ।
जगत माँ हो जायेगी, गर मोह रहित उस प्यार किया।।४३।।

जब लौ शिशु से प्रेम रहे, 'मैं माँ तेरी' माँ उसे कहे।
यह नारी का कर्म है, मोहपूर्ण यह कर्म करे।।४४।।

मूर्ख्रता इतनी ही थी, निश्चित कर्म उसने करी।
सहज स्वभाव वह नारी का, नाहक ही वहाँ अहम् भरी।।४५।।

गर सत् पे वह चित्त धरती, तो कहती मैंने कुछ नहीं किया।
पर को' स्त्री कहाँ पे है, जिसने मोह यह नहीं किया।।४६।।

स्वाभाविक कर्म कर कर के, परिणाम वहाँ से चाहती है।
कोई आसरा कहीं मिले, यह ही वह नित चाहती है।।४७।।

ऐसी भावना कब मिटे, जब प्रीत राम से हो जाये।
मोह का घूँघट ख्रुल जाये, यह राज़ समझ तब आ जाये।।४८।।

'मोरा शिशु मोरा लाड़ला', यह मुख्र से फिर नहीं कहे।
'मैं' 'मेरा' के बंधन से, पल में दूर ही वह भये।।४९।।

जब लौ सत्य न समझे वह, मोह का घूँघट नहीं उठे।
नारी ने बहु मोह किया, इस कारण नहीं देख्र सके।।५०।।

माँ का कोई दोष नहीं, जो वह माँ न बन सके।
नारी भाव में बंधी हुई, वह जो कभी न उठ सके।।५१।।

निज मोह को देख्र करी, गर श्याम चरण में जा बैठे।
मोरा मुख्रड़ा आप दिख्राओ अब, भाव यह ले कर आ बैठे।।५२।।

यह नयनन् पुतरी उलटी जो, यह पलट पुनः पायेगी।
राम चरण में बैठे जो, पल में माँ बन जायेगी।।५३।।

गर श्याम चरण में जा बैठो, सत्य समझ आ जायेगा।
फिर मोही से मोही का भी, घुँघटा ख्रुल जायेगा।।५४।।

जो देख्रो वह हो तुम नहीं, जो करो वह तुम नहीं।
यह तेरे कर्म तेरे नहीं, और शिशु यह तेरे नहीं।।५५।।

तूने जो किया वह कर दिया, यज्ञवत उसे जान लो।
आहुति दी वा चरण चढ़ी, यज्ञ पूर्ति जान लो।।५६।।

देख्र मना इक बात कहें, यहाँ मोह भी है आश्रितता भी।
पूर्ण वह सब करती रही, आश्रित की आश्रित रही।।५७।।

ख़्रून से सींचा है उसने, बेलड़िया तब ही बढ़ी।
पुष्प ख्रिला वहाँ फल लगे, फल भी नहीं वह पा सकी।।५८।।

उसकी व्यथा फिर कौन कहे, वा दर्द की बात कौन कहे।
इतना दर्द उस सहन किया, घुल घुल के और कौन सहे।।५९।।

प्राण तजे उसने कहें, प्राण वा के मुक्त भये।
मुक्त नहीं वह हो सके, वह तो मोह से युक्त भये।।६०।।

नव जीवन गर पा भी लिया, यह कहानी चलती जायेगी।
इस मोह से वह नारी फिर, कबहूँ उठ नहीं पायेगी।।६१।।

यह आश्रितता तो राम चरण, में जा के ही जा सके।
हर कर्म करे वा चरण धरे, तब ही तो तृप्ति पा सके।।६२।।

जो लग्न जहाँ पे है, वहीं पे उसने सब धरा।
उसके पास जो कुछ भी था, देख्र वह उसने दे दिया।।६३।।

वह सब करे और कर कर के, राम चरण में वह धरे।
मैं ने कुछ भी किया कभी, यह कभी नहीं कह सके।।६४।।

वह समझ गर जाये इसे, तो नाम कभी नहीं छोड़ेगी।
हर क़दम आहुति भये, वह मंदिर नहीं छोड़ेगी।।६५।।

हर कर्म वा यज्ञ भये, वह हवन कभी नहीं छोड़ेगी।
हर भाव चढ़ाये कुण्ड में, वह यज्ञ कभी नहीं छोड़ेगी।।६६।।

बुद्धि जाये चरण में, वह चरण कभी नहीं छोड़ेगी।
राम से नाता क्या जोड़ा, वह मुख्रड़ा कभी नहीं मोड़ेगी।।६७।।

राम की देन वह जान करी, सब दूर से ही निभायेगी।
पर इक पल को राम से, नयना नहीं उठायेगी।।६८।।

ऐसे जो जग में जिये, वह निश्चित माँ बन जायेगी।
राम चरण में रहे निरंतर, राम ही वह हो जायेगी।।६९।।

५.१२.१९६६

कुछ भी तो मेरे बस में नहीं..

डॉ. जे. के. महता

अर्पणा पुष्पांजलि अंक जून २०००

यह शरीर और यह संसार जो मुझे मिला है, यह पिछले जन्म में जो कर्म बीज थे, उनसे बना या उस का ही परिणाम है.. शास्त्र ऐसा कहते हैं और ध्यान लगा कर जब मैं देखता हूँ तो भी इसी निर्णय पर पहुँचता हूँ!

कौन से घर में, किस देश में, किस धर्म में, कब मेरा जन्म हुआ, मुझे कुछ पता नहीं। कैसा शरीर मिला.. लड़के का या लड़की का; काला या गोरा, हृष्ट-पुष्ट अथवा विकलांग, अमीर घर में या ग़रीब घर में.. कुछ भी तो मेरे बस में नहीं।

कब कौन सा रोग आ जायेगा, कब कैसे इस तन की मृत्यु होगी, कुछ भी तो मेरे बस में नहीं.. जिस शरीर का आदि और अन्त मेरे बस में नहीं, उस के मध्य में भी तो अनेकों घटनायें ऐसी होती हैं, जिन में मैं विवश होकर ही विचरता हूँ। कुछ ऐसी भी हैं, जो लगता है मेरी करनी हैं, पर ध्यान से देखने पर पता लगता है कि उन में भी कई औरं लोगों एवं कई और परिस्थितियों का हाथ है।

शास्त्र ठीक कहते हैं कि इस तन का जन्म, जीवन-मरण सब रेखा बंधा, पूर्व निश्चित है। यह कर्म बीज ही है जो इस जन्म में फूटा और एक जीवन वृक्ष के रूप में फला फूला। इस के ऊपर सुख दुःख रूपा फल लगे, फिर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

इस नौ द्वारों वाले तन रूपा पुर में मैं वास करता हूँ और इसे अपना मानता हूँ। इतना ही नहीं, यह 'तन ही मैं हूँ,' ऐसा मानता हूँ। यह जो इस तन में 'मैं' और 'मेरे' का भाव है, शास्त्र इसे अज्ञान का आवरण अथवा भ्रम कहते हैं, जिस से मैं मोह को प्राप्त हो गया हूँ.. यह मिथ्या है!

तन के साथ यह मेरा संग ही प्राथमिक अज्ञान है। मैं अपने आप को यह तन मान बैठा और सारे जग को इस एक तन के दृष्टिकोण से देखने लगा। वहाँ जो मुझे पसन्द आया, रुचिकर लगा, वह मुझे अपना लगने लगा और जो पसन्द न आया, अरुचिकर लगा, वह पराया लगने लगा। इस प्रकार कहीं मेरा राग हो गया और कहीं द्वेष! आज जहाँ मेरा राग है, जो मुझे अच्छा और अपना लगता है, कल वही मुझे पसन्द नहीं रहता, वही बुरा लगने लगता है, पराया बन जाता है, वहाँ द्वेष हो जाता है। इस प्रकार राग-द्वेष पर आधारित मेरे नाते-रिश्ते बनते और बिगड़ते रहते हैं।

एक तो नाते रेखा ने दिये, जैसे माँ-बाप, भाई-बहिन, पति-पत्नि, जाति-देश इत्यादि.. ये सब तो कर्म बीज में निहित थे। जैसे जैसे जीवन वृक्ष बढ़ता जाता है, ये मिलते और बिछुड़ते रहते हैं। सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, सब मिलती बिछुड़ती रहती है। यह तो मेरे बस में नहीं और न ही मैं इनमें कोई अदल-बदल कर सकता हूँ। किसी पल ऐसा लगता है कि मेरे कहे या किये से कुछ बदलाव आया, तो हक़ीक़त यह है कि वह भी रेखा बंधा ही हुआ।

जैसे रात और दिन आते जाते हैं, मौसम बदलते रहते हैं, वैसे ही इस जीवन प्रवाह में जन्म, बचपन, जवानी, बुढ़ापा, मृत्यु, सब स्वतः ही आते जाते हैं। बचपन में काम काज सीखना, जवानी में करना और बुढ़ापे में अंग शिथिल पड़ने से न कर सकना, इन के परिणामस्वरूप सुख-दुःख भी स्वतः ही होते रहते हैं। इस में तो कुछ भी मेरे बस में नहीं!

इस स्वतः बह रहे जीवन प्रवाह में यह रुचि-अरुचि, परिवर्तन की चाहना, यह एक तन के साथ तद्रूपता कर के 'मैं यह तन हूँ,' यह अहंकार और इस के परिणामस्वरूप राग और द्वेष, ये सब मिथ्या हैं। मेरे बस में तो कुछ भी नहीं.. कुछ अनुकूल मिल गया तो गुमान बढ़ गया और प्रतिकूल मिल गया तो दूसरों पर दोष मढ़ने लगा।

अपनी ग़लती हो गई तो उसे ठीक सिद्ध करके अपने को दोष विमुक्त करने लगा, दूसरे की ग़लती को माफ़ न कर सका बल्कि अपनी ग़लती का दोष भी उस पर मढ़ने लगा। दूसरों से समर्थन पाने के लिये औरों की निंदा चुगली करने लगा, ये सब मिथ्या है और मेरे बस में है।

एक तन के तद्रूप होकर, अपनी कोई चाहना पूरी करने के लिये अथवा अपने आप को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिये यह जो मैं कर रहा हूँ, यह मेरे बस में है। मैं कर तो कुछ नहीं सकता परन्तु सुखी-दुःखी होता रहता हूँ और आन्तर में नव संस्कार जमा करता रहता हूँ, जो हक़ीक़त में नव कर्म बीज बना रहे हैं। अज्ञान का आवरण रूपा अंधापन इतना है कि मैं जानता ही नहीं कि मेरा सुखी-दुःखी होना मिथ्या है और मैं अगले सुख-दुःख का कर्म बीज बो रहा हूँ।

परम पूज्य माँ के सम्पर्क में आने से पहले मैं इसी अंधेपन में जी रहा था। रेखा बंधे अनेकों शुभ कर्म किये.. परिणामस्वरूप जग में बहुत सुख-वैभव, मान-प्रतिष्ठा मिली, परन्तु मन में राग-द्वेष से रंगी हुई अनेकों लोगों की यादों के संस्कार और उन से प्रेरित मन में विक्षेप भरे भावों का ताँता सदा ही लगा रहता और मन को बेचैन करता रहता। उन पर दोष मढ़ता हुआ दूसरों से समर्थन चाह रहा, उन की चर्चा में अशान्ति ही पा रहा था।

भागवद् कृपा से शास्त्रों की सजीव, सप्राण प्रतिमा परम पूज्य माँ के साथ मेरा सम्पर्क १९५८ में हुआ। मैंने उन्हें भी उसी राग-द्वेष की तुला से तोला जिस से जग को तोलता था। पूज्य माँ ने मेरे द्वारा अपमानित होते हुये भी, और जग में बदनाम किये जाने पर भी मुझ पर कोई दोष नहीं मढ़ा। वह सदा अपने दिव्य, निःस्वार्थ प्रेम से मेरे जीवन को भरते ही चले गये।

पाँच वर्षों के घनिष्ठ सम्पर्क के उपरांत, उन से निरन्तर प्राप्त हो रहे दैवी गुणों के अनुभव के परिणामस्वरूप मैंने उन्हें शास्त्रों की प्रतिमा पाया। उनमें मैंने निराकार ब्रह्म के साकार रूप का दिव्य दर्शन पाया। उन्हें इस विध पहचान कर मैंने अपनी आन्तरिक अशान्ति और दुविधा का प्रश्न उन के सामने रखा।

उन्होंने उस पल तो इसका उत्तर कोई नहीं दिया.. परन्तु स्वयं बिना भेद भाव के, सब की निष्काम भाव से सेवा करते हुये मुझे भी निष्काम सेवा सिखाई और इस पथ पर चलाया। जैसे जैसे निष्काम कर्म का अभ्यास बढ़ता गया, मेरा आन्तर शांत होता गया। दोष-दृष्टि जनित सब भाव प्रवाह बन्द हो गये, आन्तर में छाया हुआ अंधकार भी मिटने लगा।

साधना के पथ पर क़दम धरते ही साधक सुख में सुखी नहीं होता, न ही दुःख में दुःखी। दोनों अवस्थाओं में समभाव से जीता हुआ वह शांत हुआ, मुदितमनी हो जाता है। भगवान सतगुरु राही उसे नाम से प्रकाशित पथ पर डाल देते हैं।

निष्काम कर्म, जो अब तक हो रहे थे, वह तो आजीवन होने ही हैं। इनके राही चित्त की पावनता के बिना तो हमें सुख भी नहीं मिल सकता, न कर्म बीज ही ठीक हो सकते हैं.. अध्यात्म पथ पर चलने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

साधक के लिये रेखा बंधे कर्मों में निष्काम भाव का निरन्तर अभ्यास करना उस के बस में है और यह करना अनिवार्य है। तब ही तो यह संग रूपा अज्ञान का आवरण दीख पाता है।

साधक जानता है कि स्थूल में जीवन प्रवाह रेखा बंधा है, उस के बस में नहीं। लेकिन स्थूल के प्रति आन्तर मनोप्रवाह उस के बस में है। वह राग-द्वेष युक्त बहिर्मुखी होने के नाते सुख-दुःख का भोगी होता है और आगे का कर्म बीज बनाता है। यदि निष्काम कर्म करता हुआ अपने बाह्यमुखी प्रवाह को रोक कर वह भगवान को पुकारता है तो मुदितमनी हो भागवद् चरण अनुरक्त पाता है - यह उस के बस में है। ❖

आदेश तेरा मेरा धर्म भये!

पूज्य छोटे माँ

अर्पणा पुष्पांजलि अंक जून १९९५

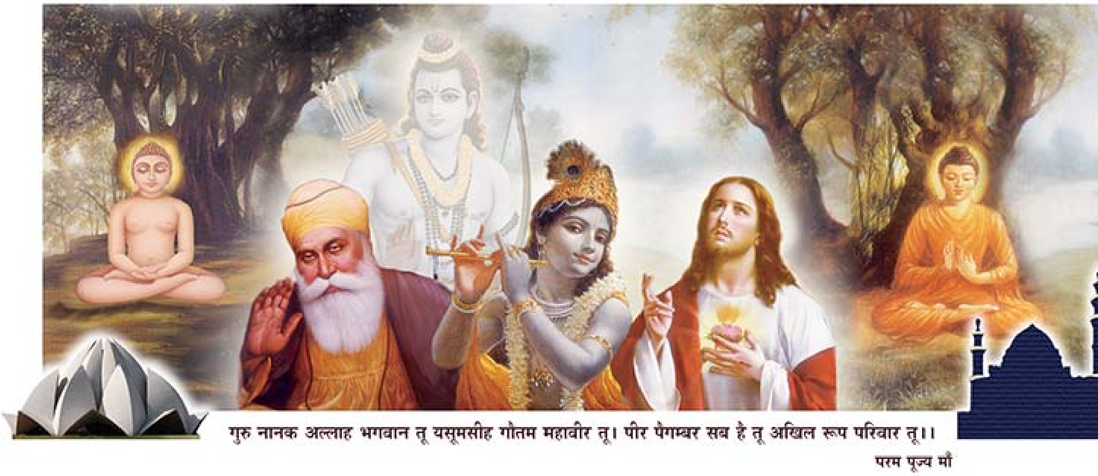

साधना है अपने साध्य के साथ एक हो जाना। अपने लक्ष्य की ओर जाने के लिये हम साधना करते हैं। हमें देखना यह है कि हमारा ध्येय क्या है? क्या हम अपने भगवान की आज्ञा का शत प्रतिशत पालन करना चाहते हैं और उनके हुक्म में रहना चाहते हैं? हमारी बुद्धि के पास इतनी क्षमता नहीं कि वह अक्षरशः उनकी बात मान सके और उनका वाक् हमारे लिये आदेश बन जाये। अपने ही मन, बुद्धि, अहं और संग रूपा विघ्न हमें भगवान की बात नहीं मानने देते। यदि हम भगवान की बात मानेंगे तो हम अपनी बुद्धि की नहीं मान सकेंगे।

हम समझते हैं कि हम भगवान में मानते हैं। हम जिस भी इष्ट में मानते हैं, उनकी बात को तो मानें। भक्त तो एक ही बात कहता है.. 'भगवान ने जो कहा है, वह ठीक है!' भगवान का आदेश सुनने के बाद श्रद्धापूर्ण साधक को कुछ और जानने की ज़रूरत ही नहीं रहती।

हम चाहे किसी भी धर्म में मानते हैं, इसमें कोई भेद नहीं। देखना तो यह है कि जो उस धर्म में कहा गया है, वह हमने मानना ही है.. व्यवहारिक स्तर पर! जीवन में हमारी साधना यह ही है कि जो भगवान कहते हैं हम उसी भाव का मनन करते हुए जग में जियें और उसी में रहें। तन को जग में जो भी करना है सो करता रहे, परन्तु चित्त भगवान में रहे। यदि तन नौकरी करता है तो नौकरी में भी वही गुण भरे जो भगवान कहते हैं। वास्तव में साधक तो भगवान के वाक् को आदेश मानता है।

परम पूज्य माँ, अर्पणा मन्दिर में..

यदि हम भगवान का कहना मानें तो जीवन कैसा होगा? भगवान ने कहा, 'यदि किसी की सेवा निष्काम भाव से करोगे तो मुझे ही पाओगे, क्योंकि इसमें अपना अहंकार, पसंद और नापसंद, सभी भूल जाओगे।' फिर हम जो भी करेंगे वह दूसरे के तद्रूप होकर करेंगे.. अपने को भूलकर करेंगे।

वेदांत भी यही कहता है कि 'मैं' को भूल कर दूसरे के तद्रूप हो जाओ। 'मैं' को भूलने की सबसे सहज विधि है कि दूसरे के लिये काम करें, अपने लिये नहीं.. दूसरों के लिये काम करने में अपनी याद ही नहीं रहेगी।

हमें अपने लिये बहुत समय की आवश्यकता नहीं होती। अपना काम करने के बाद भी हमारे पास बहुत समय बच जाता है। कम से कम यहाँ से तो आरम्भ करें कि जो समय हमारे पास बाक़ी बचा है, वह तो दूसरों को दे दें। इससे हमारा संग कम हो जायेगा। यही नहीं, हम जिसकी भी सेवा करेंगे, उसमें हम अपना मन, बुद्धि, चित्त और

अहंकार सभी कुछ डाल देंगे। तब कहीं जाकर हम अपने आप को भूलना आरम्भ करेंगे और भाव रूप में दूसरे के साथ एक हो सकेंगे।

जब हम आंतर्मुखी होकर देखेंगे, तो पता चलेगा कि राम भाव रूप में सबके हैं। उस नाते हम सब एक हैं, हम सब उन्हीं के शिशु हैं। जब तक 'मैं' में बैठकर देखेंगे तो हम अपने को दो इन्सानों के साथ भी नहीं मिला सकते.. बल्कि हमेशा इस अपने माटी के बुत रूपा तन की ही परिक्रमा लेते रहते हैं।

साधक का अपने लिये एक ही तोल है। वह तो हर पल यही देखता है, 'क्या मैंने उनकी बात मानी है या नहीं मानी.. क्या केवल अपनी पसंद के पीछे हूँ? क्या केवल अपनी मान्यताओं के अहंकार भरे भावों के ही पीछे हूँ?' भगवान कहते हैं कि इस मन और बुद्धि को छोड़ दो। यही हमारी राह के विघ्न हैं।

भगवान का साक्षित्व

भगवान हमारे साक्षी हैं.. वह हमारे साथ हैं। क्या कोई ऐसी जगह है जहाँ पर वह नहीं हैं? यदि वह हर जगह साथ ही हैं तो हम ग़लती कैसे करेंगे? यदि वह साक्षी हैं तो हम जिधर भी क़दम धरेंगे, जो भी कर्म करेंगे और जिधर भी देखेंगे, तो याद रहेगा कि यह सब भगवान के बंदे हैं। हम एक धर्म से संग करके उससे लिपट जाते हैं, यह कैसे हो सकता है! क्या भगवान केवल हमारे ही हैं? नाम चाहे जो भी लें, सब हैं तो उस भगवान के ही.. इन्सान तो सब उसी के हैं.. चाहे मान्यतायें जो भी हों! यदि हम यह मानते चलेंगे तो शनैः शनैः हमें उसके आदेशानुसार चलना आ जायेगा।

यदि हम उनकी बात मानते ही नहीं तो सारी साधना ग़लत हो जायेगी। भगवान ने गीता में कहा, 'निष्काम कर्म करो! यदि हम सच ही भगवान से प्यार करते हैं तो निष्काम कर्म करते हुए दूसरे के साथ तद्रूपता का अभ्यास करेंगे और अपने आप को भूलना सीखेंगे। हमने दूसरे के लिये काज करना है, जहाँ अपना कुछ भी न हो और न ही अपने लिये कुछ लेना हो। यदि हमने भगवान की बात मानने का निश्चय कर लिया तो फिर हमें यह वायदा पूर्ण वफ़ा और ईमानदारी के साथ निभाना होगा।

ऐसे अभ्यास से हमारा दृष्टिकोण कृतज्ञता पूर्ण हो जायेगा। जो हमें सेवा का सुअवसर प्रदान कर रहा है, हम उसके प्रति कृतज्ञता का भाव रखेंगे क्योंकि उस सेवा में हमें सुख की प्राप्ति होगी। निष्काम सेवा करने वाला तो अपनी ख़ुशी में स्वतंत्र है। वह तो अपने आप में आप सन्तुष्ट हैं। भगवान ने कहा :

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। (गीता २/५५)

अर्थात् - जब मनुष्य सम्पूर्ण मनोगत कामनाओं का त्याग कर देता है और आत्मा में अपने आप में संतुष्ट हो जाता है, तब वह स्थित प्रज्ञ कहलाता है।

सेवा वास्तव में इन्सानों की नहीं होती, भगवान की होती है। उसमें सेवा के गुण का भाव प्रधान होता है। सेवा साधक इसलिये करता है क्योंकि उसे सेवा में ख़ुशी मिलती है। इसी कारण वह दूसरे का काज करते हुए अपना सर्वस्व सहर्ष न्योछावर कर सकता है। यदि वहाँ अहंकार प्रधान हो जाये तो वह सेवा न रह कर दुःख का कारण बन जायेगी। यदि उस सेवा में हमें मान चाहिये या अपनी स्थापति चाहिये.. हम अपने लिये यदि कुछ भी चाहते हैं, तो हम दुःखी हो जायेंगे।

भगवान से प्रेम करने वाले तो बस इतना ही चाहते हैं कि जो भगवान कहते हैं, वह बात हम जीवन में कर पायें। जब तक हमारा प्रयत्न इसी ओर रहेगा, हम प्रसन्न रहेंगे। उतने ही क्षण हम अपने आप को भूले रहेंगे। हमें उस पल यह याद नहीं रहता कि इसमें अपना लाभ क्या है?

जब हम दूसरे के लिये कुछ करते हैं, दूसरे की सेवा में हम वास्तव में भगवान की सेवा करते हैं। इसी कारण तो उस सेवा में प्रसन्नता प्राप्त होती है। वहाँ पर धर्म का भेद भाव हो ही नहीं सकता। 'हमें तो सब बंदे बहुत प्यारे हैं, क्योंकि वह सब भगवान के हैं', यही साधक का भाव होता है।

इस भाव में टिकने के लिये साधक भगवान से यही प्रार्थना करेगा, 'हे भगवान! आप मेरे साथ साथ रहना, कहीं मुझसे ग़लती न हो जाये।' यह तभी सम्भव होगा जब हम अपने को भूल कर और भगवान को याद रखते हुए कर्म करेंगे। तब हम ख़ुश रहेंगे और हमें शांति मिलेगी। तभी हम उत्तरोतर साधना के पथ पर बढ़ सकेंगे। ❖

मन में ही साधु जन्म

श्रीमति शान्ता देवी

अर्पणा पुष्पांजलि अंक मार्च १९९५

नई दिल्ली में पूज्य छोटे माँ के सत्संगों में श्रीमती शांता देवी कई बार आया करती थीं। ज्ञान में गहन रुचि होने के साथ साथ उन्हें अर्पणा का वातावरण बहुत अच्छा लगता था.. इस कारण वह १९९२ से मधुबन में ही आ कर रहने लगीं.. अनेकों बार वह मन्दिर में प्रश्न पूछा करती थीं.. और अपने जीवन के अन्त तक वह निष्काम सेवा में लगी रहीं एवं साथ साथ आन्तर्मुखता से अपनी साधना में निरन्तर आगे बढ़ती रहीं..

अर्पणा में आये मुझे लगभग ३ वर्ष हो गए हैं। इस काल में निरन्तर पूज्य माँ से सत्संग के श्रवण के परिणामस्वरूप बाह्य परिस्थितियों से गिले-शिकवे और भिड़ाव के अभाव से आन्तर में एक अपूर्व शान्ति व तृप्ति का अनुभव होने लगा है। पूज्य माँ की कृपा के प्रसाद से यह जागृति हुई है कि हमारे मानसिक तनाव और दुःख का कारण केवलमात्र हमारी 'मैं' है। यह ही स्थूल में प्राप्त हमारे सुखी संसार में एक हलचल, अशान्ति, निराशा व अकर्मण्यता का भाव उत्पन्न करती है।

आन्तर दर्शन की बेला में ही साधक के मन में साधु भाव का जन्म होता है। अपने ही जाल में फंसा हुआ जब वह आन्तर्मुखी हो कर स्वयं को निरखता है, तो वह तड़प कर भगवान को पुकारता है और अपनी ही उलझन पूर्ण मनोवृत्तियों से मुक्त होने के लिए याचना करता है। सच तो यह है कि बाह्य जीवन प्रवाह रेखा बधित है। इसका संकल्प पिछले जन्म में ही हो गया था।

इस जीवन का वास्तविक प्रवाह बाह्य स्थूल का प्रवाह नहीं, केवल आन्तर्मन और भावों का ही प्रवाह है। आज, अनुकूलता में हम अपने मन के आन्तर्प्रवाह पर ऐंठ रहे हैं परन्तु कुछ भी विपरीतता आने पर हमारा मन भड़क उठता है। इस मनोवेग में डूबने से बचाव की विधि अथवा उस से बाहर निकलने का क्या मार्ग है, इस का स्पष्ट मार्गदर्शन हमें अर्पणा में पूज्य माँ के संरक्षण में मिल रहा है।

मन क्या है

सबसे पहले हमें समझना यह है कि यह मन है क्या?

मन असंख्य वृत्तियों का पुंज है। जन्म जन्म के संस्कार रूप में एकत्रित यह वृत्तियाँ परिस्थिति आने पर चेत स्तर पर उभर आती हैं। ये वर्धित भी हो सकती हैं, क्षीण भी! संस्कृताशय में पड़े अचेत चित्त से उठने वाले सूक्ष्म भावों को देखना ही अपने मन के दर्शन करना है।

यह जग तो ब्रह्म का संकल्प है। हम उस की इस सौन्दर्यमय कृति को अपनी ही मनोवृत्ति की परछाई में देखते हैं। आज भगवान की स्थूल संसार रूपा रचना को हमारे व्यक्तिगत मन ने ही अपना रूप दिया हुआ है। वस्तुतः स्थूल व सूक्ष्म, अपने ही मन का खिलवाड़ है।

आज आसुरी वृत्तियों का वर्धन ही हमारे मन में कलियुग पैदा कर रहा है और उसके परिवर्तन की हम चाहना ही नहीं करते। जब हम आन्तर में यह देखेंगे कि हमारे मन का उद्वेग, परिस्थिति पर निर्भर नहीं बल्कि हमारे अपने ही आन्तरिक भावों का द्वन्द्व है, तो इन वृत्तियों के वर्धन को रोकने के लिए ऐसे निरोध क्षणों में ही साधु भाव का जन्म होता है। अपने ही मन के आन्तर दर्शन करते हुए साधक जब यह मान लेगा कि अपने दुःख का कारण 'मैं आप ही हूँ, कोई अन्य नहीं,' तब ही हृदय में साधु भाव का जन्म होता है।

साधक जान लेता है कि मनोप्रवाह में उठने वाले भाव मिथ्या हैं। वह अपने आन्तर के सूक्ष्म मन में उठने वाले भावों को मौन होने की याचना करता है। उसी याचना के क्षणों में एक नन्हीं, सूक्ष्म वृत्ति असुरत्व का त्याग करके उसे देवत्व भाव में ले आती है। वही साधक को असत् से निकाल कर सत् की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती है।

यही उसके लिए 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का सतत् भाव बन जाता है। यहाँ वृत्तियों का उठना बन्द नहीं हो जाता, क्योंकि हमारा मन केवलमात्र वृत्ति पुंज का बहाव ही तो है। साधक की वृत्ति यमुना की लहरों की भांति भगवान कृष्ण के चरण स्पर्श करने के लिए उमड़ उमड़ कर ऊपर उठती है। वह तभी शान्त होती है जब वह साधु वृत्ति का रूप धारण कर लेती है। यह साधु वृत्ति मन के जग में जन्म लेकर अमर होने के लिए याचना करती है।

व्यावहारिक स्तर पर परिस्थिति के प्रतिरूप में उठने वाले मन के भावों का विश्लेषण ही साधु भाव का जन्म समझना चाहिये। वृत्तियों के प्रवाह का बहाव ही मन का मिथ्यात्व है और उन भावों का परिवर्तन ही साधु भाव का जन्म है। यही नाम का जन्म है और यही साधु का प्रसाद है।

आन्तर दर्शन कैसे?

जीव के आन्तर में अहं की प्रधानता रहती है। जब यह अहं अपने को बदलना चाहता है, यही अहं कृपा है। इस अहं कृपा के परिणामस्वरूप जन्मे साधु वृत्ति के बीज ही साधक के आन्तर विश्लेषण में सहायक हो सकते है। वास्तव में अहं भाव का बांध भी तभी टूट सकता है जब गुरु कृपा का प्रसाद मिले।

जिस के मन में सत्य को देखने की जिज्ञासा होती है, वही सतगुरु का प्रसाद प्राप्त कर सकता है। जब हम अपने इष्ट, अपने परम गुरु के वाक् को श्रद्धापूर्वक जीवन में उतारने का प्रयास करेंगे, तब हम यह जान पायेंगे कि राग और द्वेष के भाव हमारे मन में ही हैं। आज हम इस अज्ञानता में जी रहे हैं। हमारे आन्तर में स्थित आसुरी वृत्तियों का दर्शन भी हमें पूज्य गुरु ही करवा सकते हैं। यह तभी संभव है जब हम अपने अहं भाव को छोड़कर विनम्रता व श्रद्धा से गुरु के चरणों का आसरा लें। गुरु भी हमें वही देते हैं, जैसा हम चाहते हैं।

इस ज्ञान का प्रकाश भी अर्पणा में मुझे परम गुरु, परम पूज्य माँ से ही मिला है। यह सद्‌गुरु की अतीव करुणा है कि उन्होंने अपनी शरण में आई मुझ मूढ़ा को अपने अचेत मन की वृत्तियों के प्रवाह का निरन्तर दर्शन करने का सुअवसर प्रदान किया है।

आज मैं अपने अनुभव से यह कह सकती हूँ कि सत्य तो यह है कि वृत्तियों का निरोध केवल मात्र गुरु ही कर सकते हैं और वही हमें चित्त पावन करने की राह पर भी ले जाते हैं। इस मन के विपरीत भाव न तो कर्मों से ही मिट सकते हैं और न ही ज्ञान से!

जब साधु भाव रूपा शिशु हृदय में जन्म लेता है तब विपरीत भाव स्वतः ही मिटने लग जाता है। राम भाव ही साधु भाव है, यही भक्ति प्रवाह है, यही नाम प्रवाह है। जितना जितना मन मौन होता जाता है, उतना उतना मन शान्ति प्राप्त करता है। नाम के बहाव में साधु भाव सर्वत्र राम के ही दर्शन करता है।

तब महान् से महान् विपरीत परिस्थिति भी ऐसे साधक के मन को विचलित नहीं करती, उसमें विक्षेप नहीं लाती। तत्पश्चात् जीव की स्थिति केवल नाममय होती है। उसके आन्तर में अहं के राज्य की अपेक्षा राम का राज्य होता है। उसका चित्त अपने प्रेमास्पद के चरणों में खोया रहता है और वह आप नाम की प्रतिमा ही बन जाता है।

❖ ❖ ❖

परम पूज्य मा

अर्पणा
समाचार पत्र

अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन,
करनाल, हरियाणा
मार्च २०२२

अर्पणा आश्रम

क्रिसमस का उत्साह!

मन्दिर में सम्पूर्ण अर्पणा परिवार द्वारा अत्यंत प्रेमपूर्वक एवं गर्मजोशी के साथ क्रिसमस का त्योहार मनाया गया। परम पूज्य माँ द्वारा यीशु मसीह के जीवन की दिव्यता के वर्णन ने वातावरण को और भी भव्य बना दिया।

'अमोस, द ब्लाइंड बॉय', प्रेम के अलौकिक चमत्कारों के सुसंदेश के साथ बहुत वर्ष पूर्व मंचन किये गये नाटक का वीडियो से वातावरण मीठी यादों से ओत-प्रोत हो गया। सभी ने उत्साहपूर्वक क्रिसमस कैरोल भी गाये जिन्हें पूरी दुनिया में पसंद किया जाता है। परिवार के ही एक सदस्य बने सांता क्लॉज़.. उनसे उपहार पाकर बच्चों की ख़ुशी का ठिकाना न रहा।

ज़ूम मीटिंग्ज़

परम पूज्य माँ द्वारा साधारण भाषा में दिये गये, परिवार के सदस्यों, मित्रों एवं जिज्ञासुओं द्वारा मन्दिर में पूछे गये प्रश्नो के असाधारण एवं दिव्य उत्तर.. अर्पणा की ज़ूम मीटिंग में प्रतिदिन प्रातः ७ बजे एवं सायं ७ बजे, वीडियो द्वारा दिखाये जाते हैं। दिनचर्या में व्यवहार में लाया जाने वाला यह दिव्य ज्ञान, सत्य के प्रति जागरूकता एवं सत-चित-आनन्द में स्थापित होने के लिये साधक को प्रेरित करता है।

अर्पणा अस्पताल

एक अन्य उपलब्धि - नया ऑक्सीजन प्लांट (संयंत्र)

अर्पणा अस्पताल को, एक नया ऑक्सीजन प्लांट 'सेवा अंतर्राष्ट्रीय संगठन' द्वारा प्रदान किया गया। क्रिकेटर, श्री सुमित नरवाल द्वारा, १८ जनवरी २०२२ को इसका उद्घाटन किया गया।

इस ऑक्सीजन प्लांट की क्षमता १५० लीटर प्रति मिनट ऑक्सीजन बनाने की है। इसे कोरोना महामारी से निजात पाने के लिये आम लोगों को समर्पित किया गया।

श्री नरवाल ने कहा, 'कोरोना से संघर्ष कर रहे किसी भी व्यक्ति की ऑक्सीजन की कमी से जान नहीं जानी चाहिए। इसके लिये हम सदैव प्रयासरत रहेंगे।'

इसके स्थापित होने से अर्पणा अस्पताल आईसीयू, कोविड वार्ड आदि में पाइप लाइन द्वारा ऑक्सीजन पहुँचाने में सक्षम हुआ है।

हरियाणा

अर्पणा द्वारा १०० गाँवों में 'कोविड टीकाकरण कवच'

सरकार द्वारा टीकाकरण करने के अभियान को, अर्पणा ने अपने लक्षित १०० गाँवों में पहली ख़ुराक के अन्तर्गत ९४% टीकाकरण एवं दूसरी ख़ुराक के अन्तर्गत ७७% टीकाकरण करके सरकार के प्रयास को सुदृढ़ किया।

अर्पणा द्वारा ८० स्वयं सहायता समूहों की महिला स्वयं सेवकों को घर घर जाने, वैक्सीन के विषय में परामर्श देने एवं सरकारी टीकाकरण शिविरों में ग्रामीण लोगों को ले जाने के लिये प्रशिक्षित किया गया।

अगस्त से दिसम्बर २०२१ तक १,५२,०४४ कोविड वैक्सीन लगाये गये।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को समर्थन देने के लिए आईडीआरएफ एवं फ्रैंडज़ ऑफ कल्पना एंड जयदेव देसाई (यूएसए), ग्वेर्नज़े ओवरसीज़ एड कमीशन, डेम मैरी और अर्पणा ग्वेर्नज़े को हमारी गहरी कृतज्ञता!

स्वयं सहायता समूह की महिलाओं को कमज़ोर वर्गों के लिये एक नये 'ऐप' की जानकारी

सुश्री तवलीन, मुख्यमंत्री की सुशासन सहयोगी ने, अर्पणा के स्वयं सहायता समूहों की ५० महिला नेताओं को संबोधित किया।

समाज कल्याण विभाग, हरियाणा द्वारा जारी किया गया यह नया 'ऐप' महिलाओं एवं बुजुर्गों के लिये लाभदायक है जो अपनी दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं।

इस 'ऐप' के २ भाग हैं :

१) सेवाएं सम्बन्धी - जैसे आवेदन दाखिल करना, बिलों का भुगतान करना आदि, एवं

२) शिकायत सम्बन्धी - एक पोर्टल, जिसके माध्यम से दुर्व्यवहार, हिंसा या अन्याय के खिलाफ कोई भी रिपोर्ट कर सकता है। इस रिपोर्टिंग के लिये गुमनामी सुनिश्चित की गई है।

दिल्ली में अर्पणा के शैक्षिक कार्यक्रम

मोलरबंद स्थित 'अर्पणा शिक्षा केन्द्र'

२ दिसम्बर को, अर्पणा के सभी प्राथमिक शिक्षकों के लिए रचनात्मक लेखन पर एक कार्यशाला ओयोजित की गई, जिसका संचालन सुश्री मधुलिका अग्रवाल द्वारा किया गया।

सुश्री मधुलिका को २००७ में हिन्दी एकादमी के 'बाल एवं किशोर साहित्य सम्मान' एवं २०२० में 'चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट अवार्ड' द्वारा सम्मानित किया गया। उनकी कहानियाँ एनसीईआरटी, मैकमिलन और एडब्ल्यूआईसी के संग्रहों में प्रकाशित की गई हैं। उन्होंने ५ पुस्तकें और भी लिखी हैं एवं प्रकाशन क्षेत्र में भी उन्हें २ दशकों का अनुभव प्राप्त है।

सुश्री मधुलिका ने विभिन्न तकनीकों द्वारा बच्चों की कल्पना बढ़ाने एवं रचनात्मक लेखन द्वारा स्वयं को अभिव्यक्त करने की महत्वपूर्ण भूमिका के विषय में बताया। उन्होंने अर्पणा ट्रस्ट की कक्षा चौथी की जैस्मिन को इसमें सम्मिलित किया और जैस्मिन की प्रथम कहानी को एक पुस्तक में भी लिया, जिसे अब वह प्रकाशित कर रही हैं।

जैस्मिन, लेखक

अर्पणा अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में सहयोग देने के लिए एस्सेल फाउंडेशन, नई दिल्ली, अवीवा, यूके केयरिंग हैंड फॉर चिल्ड्रेन, यूएसए एवं अर्पणा कनाडा का अत्यन्त आभारी है।

वसंत विहार में ज्ञान आरम्भ

हमारा लक्ष्य वंचित बच्चों एवं सुविधा प्राप्त बच्चों के सीख पाने के अन्तर को कम करना है। कोविड-१९ महामारी के कारण स्कूलों के लम्बे समय तक बन्द रहने से सीखने में बाधा आने के अतिरिक्त, बच्चों का मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य भी प्रभावित हुआ है।

अर्पणा द्वारा छात्रों के साथ बेहतर जुड़ाव के लिए एक 'ब्रिज पाठ्यक्रम' तैयार किया गया जिसमें :

- **शिक्षक समाधान देते हैं..** छात्रों के स्कूल के कार्यपत्रकों में कठिनाईयाँ आने पर।
- **शैक्षिक वीडियो एवं ऑडियो टेप..** राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय महत्व के विभिन्न विषयों के टेप छात्रों के लिये उपलब्ध कराये गये।
- **कक्षा ९ के छात्रों के लिये छात्रवृत्ति की जानकारी।**
- **ऑनलाइन पढ़ाई के लिये महीने के सर्वश्रेष्ठ छात्रों की सराहना करना।**
- **टॉक टू मी (टीटीएम)** एक स्वैच्छिक पहल है.. जिसका उद्देश्य युवा लोगों में आत्मविश्वास एवं बोल-चाल में अंग्रेज़ी भाषा के कौशल का सुधार करना है।

हिमाचल प्रदेश की वादियाँ

अधिक वित्तीय सुरक्षा के लिए सिंचाई व्यवस्था

सेब और अखरोट के पौधों की रोपाई

हिमाचल प्रदेश के चंबा ज़िले की जतकारी पंचायत की ८ दूरदराज़ की बस्तियों के १२१ परिवारों की आर्थिक सुरक्षा के लिये ८ सिंचाई प्रणालियों के अन्तर्गत एक पानी की टंकी एवं खेतों के लिये पाइपलाइन की सुविधा प्रदान की गई।

पहले केवल आधा एकड़ भूमि पर ही घरेलू उपयोग के लिये सब्जियाँ उगाई जाती थीं - जिससे कोई आय उपार्जित नहीं होती थी। सिंचाई की सुविधा आने से १६.५ एकड़ भूमि पर सब्जियाँ उगाई गईं, जिनसे गाँव वालों को १६ लाख से भी अधिक आय की प्राप्ति हुई।

इसके अतिरिक्त गाँव की सांझी पंचायती भूमि पर ६७,७०० से भी अधिक पेड़ लगाये गए।

दोला राम

ग़रीबी से त्रस्त एक किसान, दोला राम, जतकारी क्षेत्र के दादर गाँव के किसान स्वयं सहायता समूह से सम्बधित है। उसने अपने समूह से २०,००० रुपये का ऋण लेकर एक छोटी सी आटा चक्की (पनचक्की) स्थापित की, जो पानी की शक्ति से चलती है।

गाँव के लोग अपने मक्के व गेहूँ की पिसाई यहाँ से करवाते हैं जिससे दोला राम लगभग ५००० रुपये प्रतिमाह कमा पाता है।

हिमाचल प्रदेश में स्वास्थ्य और विकास कार्यक्रमों के अनुदान के लिए टाइड्ज़ फाउंडेशन (यूएसए), बैजनाथ भंडारी पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट (नई दिल्ली) और अर्पणा ग्र्वनेज़े और ग्वेर्नज़े ऐड ओवरसीज़ (नई दिल्ली), को हमारी गहरी कृतज्ञता!

It is Your compassionate support that sustains Arpana's Services!

Arpana Trust and Arpana Research & Charities Trust are both approved under Section 80G of the Income Tax Act, 1961, giving 50% tax relief for donors in India.
FCRA Registration No. for Arpana Trust is 172310001
FCRA Registration No. for Arpana Research & Charities Trust is 172310002
Send your contribution for dissemination of humane values & medical and community welfare services in Delhi to:

Arpana Trust, Madhuban, Karnal, Haryana 132037
Send your contributions for health & development services in Haryana & Himachal to:

Arpana Research & Charities Trust, Madhuban, Karnal, Haryana 132037
Send contributions in USA to:

Mr. Vinod Prakash, President, IDRF, 5821 Mossrock Drive, North Bethesda, MD 20852
Mr. Jagjit Singh, AID for Indian Development, 84 Stuart Court, Los Altos, CA 94022-2249
Send contributions to Arpana Canada:

c/o Mrs. Sue Bhanot, 7 Scarlett Drive, Brampton, Ontario L6Y 3S9, Canada
Please let us know by email or telephone, whenever you transfer funds to Arpana.

Information & Resources Office: 91-184-2390905 **Executive Director:** 91-9818600644
emails: **at@arpana.org and arct@arpana.org**

Contact person: Mrs. Aruna Dayal, Director Development. Mobile 91-9991687310
Websites: **www.arpana.org** **www.arpanaservices.org**